क्रोध : स्वरूप एवं निवृत्ति के उपाय

—साध्वी हेमप्रज्ञाश्री

[स्व० प्रवर्तिनी विचक्षणश्री जी महाराज की शिष्या
जैन आगमों की विशिष्ट अभ्यासी विदुषी श्रमणी]

●

क्रोध एक ऐसा मनोविकार है, जिसकी अभिव्यक्ति अनेक व्यक्तियों के द्वारा अनेक रूपों में होती है। किसी का क्रोध ज्वालामुखी के विस्फोट के समान होता है तो किसी का क्रोध उस बड़वाग्नि के समान—जो समुद्र के अन्दर ही अन्दर जलती रहती है। किसी का क्रोध दियासलाई की भभक के समान एक क्षण जलकर समाप्त हो जाता है तो किसी का क्रोध कण्डे की अग्नि के समान धीरे-धीरे बहुत देर तक सुलगता रहता है। किसी का क्रोध मशाल की उस आग के समान होता है जो जलकर भी राह दिखा देती है तो किसी का क्रोध उस दावाग्नि के समान होता है जो सब कुछ भस्म कर देती है। किसी का क्रोध उस जठराग्नि के समान होता है जो स्वयं के लिए हितकारी बन जाता है और किसी का क्रोध उस श्मशान की आग के समान होता है जो शरीर की एक-एक बोटी को जला डालती है।

क्रोध प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में होता है। क्रोध की मात्रा में अन्तर हो सकता है, क्रोध की अभिव्यक्ति में भिन्नता हो सकती है, क्रोध के काल का प्रमाण अलग हो सकता है किन्तु यदि कोई व्यक्ति क्रोधरहित है तो वह महान सन्त/साधक या वीतराग हो सकता है।

क्रोधी मनुष्य को सर्प की उपमा देते हुए तथागत ने चार प्रकार के सर्प बताए हैं[1]—

(१) विषैला किन्तु घोर विषैला नहीं।
(२) घोर विषैला, मात्र विषैला नहीं।
(३) विषैला, घोर विषैला।
(४) न विषैला, न घोर विषैला।

---

१. अंगुत्तर निकाय, भाग-२ पृ० १०८-१०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार क्रोधी व्यक्ति भी चार प्रकार के होते हैं—

(१) शीघ्र क्रोधित, किन्तु अधिक देर नहीं।
(२) शीघ्र क्रोधित नहीं किन्तु आने पर बहुत देर क्रोध।
(३) शीघ्र क्रोधित एवं क्रोध का समय भी लम्बा।
(४) न शीघ्र क्रोधित, न ही अधिक समय तक क्रोध।

जैनागमों में क्रोध के काल की अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद बताए गए हैं[1]—

(१) **अनन्तानुबन्धी**—पर्वत की उस दरार के समान[2]—जो दीर्घकालपर्यन्त बनी रहती है। उसी प्रकार जो क्रोध जीवनपर्यन्त बना रहता है—वह अनन्तानुबन्धी क्रोध हैं। ऐसा क्रोधी कभी आराधक नहीं हो सकता। इसलिए सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किया जाता है—जिससे कम से कम एक वर्ष में तो हम क्रोध के प्रसंग की स्मृति को समाप्त कर दें।

(२) **अप्रत्याख्यानी**—पृथ्वी पर बनी रेखा के समान[3] जो काफी समय तक बनी रहती है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानी क्रोध अधिक से अधिक एक वर्ष तक रहता है—उसके पश्चात् तो वह निश्चित समाप्त हो जाता है।

(३) **प्रत्याख्यानावरण**—बालू की रेखा[4]—जिस प्रकार बालू मिट्टी पर बनी रेखा (लकीर) कुछ समय बाद समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण क्रोध अधिक से अधिक चार माह तक रह सकता है। इसलिए चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया जाता है।

(४) **संज्वलन**—जल की रेखा[5]—जिस प्रकार जल में खींची रेखा तुरन्त समाप्त हो जाती है उसी प्रकार जो क्रोध तुरन्त शान्त हो जाता है—अधिक से अधिक १५ दिन तक रहता है—वह संज्वलन क्रोध है। इस अपेक्षा से पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है।

प्रत्येक दिवस और रात्रि को होने वाली भूल के लिए देवसी-राई प्रतिक्रमण होता है।

ये चारों भेद क्रोध की अभिव्यक्ति की अपेक्षा से नहीं अपितु क्रोध का प्रसंग स्मृति में कितने काल तक रहता है—इस अपेक्षा से किये गये हैं।

स्थानांग सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र में क्रोध की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं[6]—

(१) **आभोग निर्वतित**—बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला क्रोध।[7] वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि ने आभोग का अर्थ ज्ञान बताया है।[8] आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना सूत्र की टीका में इसकी व्याख्या इस प्रकार की है।[9] जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के द्वारा किए गए अपराध को भली भाँति जान लेता है और विचार करता है कि यह अपराधी व्यक्ति नम्रतापूर्वक कहने से समझने वाला नहीं है। उसे क्रोधपूर्ण मुद्रा ही पाठ पढ़ा सकती है। इस विचार से वह जानबूझ कर क्रोध करता है।

---

१. ठाणं स्थान-४, उ० ३, सू० ३५४।
२. ठाणं स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।
३. ठाणं स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।
४. ठाणं स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।
५. ठाणं स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।
६. (अ) ठाणं स्थान ४, उ० १, सू० ८८।
(ब) प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २९१।
७. ठाणं, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।
८. स्थानांग वृत्ति, पत्र १८२।
९. प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २९१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) **अनाभोग निर्वर्तित**—अबुद्धिपूर्वक होने वाला क्रोध। आचार्य मलयगिरि के अनुसार[1]—जो मनुष्य किसी विशेष प्रयोजन के बिना, गुणदोष के विचार से शून्य होकर प्रकृति की परवशता से क्रोध करता है—वह अनाभोग निर्वर्तित है।

(३) **उपशान्त**[2]—जिस क्रोध के संस्कार तो हैं किन्तु उदय में नहीं है।

(४) **अनुपशान्त**[3]—क्रोध की अभिव्यक्ति।

क्रोध की अभिव्यक्ति, क्रोध की उत्पत्ति अनेक कारणों से होती है। अपने प्रति अन्याय होने पर प्रतिरोध प्रकट करने के लिए, कार्यक्षमता के अभाव में कार्यसंलग्न होने पर, शारीरिक दुर्बलता, रोग आदि की अवस्था में, थकावट में कार्य करना पड़े, कार्य में कोई अनावश्यक बाधा डाले तो क्रोध आने लगता है। यह तो प्रकट कारण हैं। वस्तुतः जहाँ-जहाँ अपनी अनुकूलता, प्रियता में बाधा उपस्थित होती है, अपना मान खण्डित होने पर, माया प्रकट होने पर तथा लोभ सन्तुष्ट न होने पर क्रोधोत्पत्ति होती है। मान, माया, लोभ कषाय कारण हैं तथा क्रोध कार्य है। अपनी इच्छा का अनादर, अपेक्षा उपेक्षा में परिवर्तित होने पर, विचारों में संघर्ष होने पर क्रोध प्रकटीभूत होता है।

स्थानांग सूत्र में क्रोधोत्पत्ति के दस कारणों का कथन किया गया है[4]—इष्ट पदार्थों, इष्ट विचारों, इष्ट व्यक्तियों के संयोग में बाधा उपस्थित करने वाले के प्रति क्रोध का उद्भव होता है एवं अनिष्ट पदार्थों, अनिष्ट विचारों, अनिष्ट व्यक्तियों के संयोग में कारणभूत बनने वाले के प्रति भी क्रोध उभरता है।

क्रोध की उत्पत्ति का कारण बताते हुए गीता में कहा है[5]—विषयों का चिन्तन करने वाले मनुष्य की उन विषयों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की प्राप्ति की कामना उत्पन्न होती है, कामना से उनकी प्राप्ति में विघ्न उपस्थित होने पर क्रोध उत्पन्न होता है। अतः क्रोध की उत्पत्ति का मूल कारण विषयों के प्रति आसक्ति है। प्राचीनतम आगम आचारांग सूत्र में तो विषयों को ही संसार कहा है।[6]

क्रोध का प्रकाशन तीव्र रोष के रूप में भी हो सकता है और कभी सामान्य खीझ और चिढ़ के रूप में भी। यह कभी-कभी भय या दुःख की भावनाओं से मिश्रित ईर्ष्या में और कभी भय से मिश्रित घृणा की भावना में भी पाया जाता है।

क्रोध की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में होती है। सामान्यतया कभी-कभी मनुष्य अपने क्रोध को भी क्रोध नहीं समझ पाता है। मात्र तीव्र गुस्सा करना ही क्रोध नहीं है अपितु क्रोध की कई परिणतियाँ हैं जिसे भगवती सूत्र आदि में क्रोध का पर्यायवाची बताया है।

क्रोध के पर्याय

समवायांग सूत्र[7] एवं भगवती सूत्र[8] में क्रोध के दस पर्यायवाची नामों का कथन किया गया है। जो निम्नलिखित हैं—

---

१. प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति पत्र २६१
२. ठाणं, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।
३. ठाणं, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।
४. ठाणं, स्थान १०, सूत्र ७।
५. गीता, अ० २, श्लोक ६२।
६. आयारो, अ० १, उ० ५, सू० ९३।
७. कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भंडणे विवाए""समवाओ, समवाय ५२, सूत्र १।
८. भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सूत्र २।

Jain Education International ‍‍ For Private & Personal Use Only ‍‍ www.jainelibrary.org

(१) क्रोध (२) कोप (३) रोष (४) दोष (५) अक्षमा (६) संज्वलन (७) कलह (८) चाण्डिक्य (९) भंडन (१०) विवाद।

भगवती सूत्र के वृत्तिकार ने इनका विवेचन इस प्रकार किया है—

(१) **क्रोध**—'क्रोध परिणामजनकं कर्म तत्र क्रोधः'[1] क्रोध परिणामों को उत्पन्न करने वाले कर्म का सामान्य नाम क्रोध है। अन्तरंग में क्रोध के कर्मपरमाणुओं का उदय होने पर कभी-कभी व्यक्ति बाह्य निमित्त न होने पर भी अपने भावों में क्रोध का अनुभव करता है और निमित्त मिले तो उस क्रोध को अभिव्यक्त भी कर देता है।

(२) **कोप**—वृत्तिकार के अनुसार—"क्रोपादयस्तु तद्विशेषाः'[2] विशेष क्रोध ही कोप है। वृत्ति अनुवादक ने कोप का अर्थ इस प्रकार किया है—क्रोध के उदय को अधिक अभिव्यक्त न करना कोप है। कई व्यक्तियों का क्रोध बडवाग्नि के समान होता है—बाह्य दृष्टि से सागरवत् गंभीर किन्तु अन्तरंग में ज्वाला।

अभिधान राजेन्द्र कोष में 'कोप' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है[3]—कोप कामाग्नि से उत्पन्न होने वाली एक चित्तवृत्ति है। वह प्रणय और ईर्ष्या से उत्पन्न होती है। इसी प्रसंग में कोषकार ने साहित्य-दर्पण की व्याख्या भी प्रस्तुत की है। साहित्यदर्पण के अनुसार प्रेम की कुटिल गति के कारण जो कारण बिना होता है वह कोप है।

(३) **रोष**—भगवती वृत्ति के अनुसार[4]—'रोष क्रोधस्यैवानुबन्धो'—जो क्रोध सतत् चलता रहता है, जिसमें क्रोध की परम्परा बनी रहती है वह रोष है। रोष में क्रोध का प्रसंग समाप्त होने पर भी हृदय में क्रोध की ज्वाला शान्त नहीं होती। अतः व्यक्ति कार्य करता है किन्तु उसका कार्य ही उसके क्रोधाविष्ट होने का परिचय देता रहता है। कई व्यक्ति जोर-जोर से वस्तु फेंकना, उठाना, पाँव पटक-पटक कर चलना, झनझनाहट आदि क्रियाओं से अपने क्रोध का परिचय देते रहते हैं।

(४) **दोष**—वृत्तिकार के अनुसार[5]—'दोषः आत्मनः परस्य वा दूषणमेतच्च क्रोधकार्यं द्वेषो वा प्रीतिमात्रं।' स्वयं को अथवा दूसरे को दूषण देना—क्रोध का कार्य है अतः दोष क्रोध का समानार्थक नाम है। दोष का अपर नाम द्वेष भी है। अप्रीति परिणाम द्वेष है। क्रोधावेश में व्यक्ति स्वयं पर या दूसरे पर भयंकर दूषण/लांछन लगा देता है—यह दोष है।

(५) **अक्षमा**—'अक्षमा परकृतापराधः'[6]—दूसरे के अपराध को सहन न करना—अक्षमा है। प्रायः व्यक्ति अपने से सत्ता, सम्पत्ति, पद में बड़े व्यक्ति के अपराध/क्रोध को चुपचाप सहन कर लेता है क्योंकि जानता है कि सहने में ही लाभ है। किन्तु अपने से निम्न वर्ग पर—वह परिवार ही अथवा भृत्यवर्ग—उनके अपराध को सहन न करके उनके अपराध से भी अधिक दण्ड देता है।

---

१. भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श. १२, उ. ५, सू. २
२. भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श० १२, उ० ५, सू० २
३. अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग ७, पृ. १०६
४. भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श. १२, उ. ५, सू. २
५. भगवती सूत्र, श. १२, उ. ५, सू. २ की वृत्ति
६. भगवती सूत्र—श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) **संज्वलन**—'संज्वलनो मुहुर्मुहुः क्रोधाग्निना ज्वलनं'[1]—बार-बार क्रोध से प्रज्वलित होना—संज्वलन है। इस प्रसंग पर संज्वलन का अर्थ संज्वलन कषाय की अपेक्षा भिन्न है। अनन्तानुबंधी आदि भेदों में संज्वलन का अर्थ अल्प है। यहाँ संज्वलन का अर्थ क्रोधाग्नि का पुनः-पुनः भड़कना है।

(७) **कलह**—'कलहो महता शब्देनान्योन्यमसमंजस भाषणमेतच्च क्रोधकार्यं।'[2]—क्रोध में अत्यधिक एवं अनुचित शब्दावली प्रयोग करना। लोक-लाजभय का अभाव, शिष्टता का अभाव, गम्भीरता का अभाव हो तो व्यक्ति कलह करने में संकोच का अनुभव नहीं करता। इसे सामान्य रूप से वाक्युद्ध भी कहा जाता है अर्थात् शब्दों की बौछार से जो क्रोध प्रदर्शित किया जाय—वह कलह है।

(८) **चांडिक्य**--'चाण्डिक्यं रौद्राकारकरणं एतदपि क्रोध-कार्यमेव....।'[3] क्रोध में भयंकर रौद्ररूप धारण करना चाण्डिक्य है। भयंकर क्रोध में कई व्यक्ति इतने रौद्र, क्रूर, नृशंस हो जाते हैं कि किसी के प्राण हरण करने में भी नहीं हिचकिचाते। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जिसने एक ब्राह्मण पर क्रोध आने पर समस्त ब्राह्मणों की आँखें निकालने का आदेश दिया था। परशुराम—जिसने पृथ्वी को क्षत्रियविहीन बनाने के लिए भयंकर रक्तपात किया था। इस प्रकार के भयंकर क्रोध को चाण्डिक्य कहा गया है।

(९) **भंडन**—'भण्डनं दण्डकादिभिर्युद्धमेतदपि क्रोधकार्यमेव....।'[4] दण्ड, शस्त्र आदि से युद्ध करना—भंडन है।

(१०) **विवाद**—'विवादो विप्रतिपत्तिसमुत्थवचनानि इदमपि तत्कार्यमेवेति....।'[5] परस्पर विरुद्ध वचनों का प्रयोग करना विवाद है।

कषायपाहुड सूत्र में भी क्रोध के समानार्थक दस नाम दिए गए हैं किन्तु उसमें समवायांग सूत्र के दस पर्यायवाची नामों में से चाण्डिक्य एवं भंडन भेद प्राप्त नहीं होते अपितु वृद्धि एवं झंझा नाम मिलते हैं। कषायपाहुड में क्रोध के दस पर्यायवाची नाम इस प्रकार हैं[6]—

(१) क्रोध (२) कोप (३) रोष (४) अक्षमा (५) संज्वलन (६) कलह (७) वृद्धि (८) झंझा (९) द्वेष और (१०) विवाद।

इनमें से वृद्धि और झंझा के विषय में कषायपाहुड के वृत्ति अनुवादक का कथन इस प्रकार है[7]—

वृद्धि—वृद्धि शब्द का प्रयोग बढ़ने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।[7] जिससे पाप, अपयश, कलह और वैर आदि वृद्धि को प्राप्त हो वह क्रोधभाव ही वृद्धि है। यहाँ क्रोध के अर्थ में वृद्धि शब्द इतना संगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि वृद्धि शब्द का प्रयोग क्रोध के परिणाम के रूप में हुआ है, क्रोध रूप में नहीं।

---

१. भगवती सूत्र, श. १२, उ. ५, सू. २ की वृत्ति
२. भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
३. भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
४. भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
५. भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
६. कोहो य कोव रोसो य अक्खम-संजलण-कलह-वड्ढी य।
झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति ॥
(क० चू०, अ० ९, गा० ८६)
७. क० चू०, अ० ९, गा० ८६ का अनुवाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झंझा—अत्यन्त तीव्र संक्लेश परिणाम को झंझा कहते हैं।[1] आचारांग सूत्र में झंझा शब्द का प्रयोग व्याकुलता के अर्थ में किया है।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्रोध के कुछ अन्य रूपों की भी व्याख्या की है[3]—

(१) **चिड़चिड़ाहट**—क्रोध का एक सामान्य रूप है—चिड़चिड़ाहट। जिसकी व्यंजना प्रायः शब्दों तक ही रहती है। कभी-कभी चित्त व्यग्र रहने, किसी प्रवृत्ति में बाधा पड़ने पर या किसी बात की मनोनुकूल सुविधा न मिलने के कारण चिड़चिड़ाहट आ जाती है।

स्वयं को बुद्धि, सत्ता, सम्पत्ति में अधिक मानने वाला, स्वयं को व्यस्त और दूसरे को व्यर्थ मानने वाला भी प्रायः चिड़चिड़ाहट से उत्तर देता है।

(२) **अमर्ष**—किसी बात का बुरा लगना, उसकी असाध्यता का क्षोभयुक्त और आवेगपूर्ण अनुभव होना अमर्ष कहलाता है। क्रोध की अवस्था में मनुष्य दुःख पहुँचाने वाले पात्र की ओर ही उन्मुख रहता है। उसी को भयभीत या पीड़ित करने की चेष्टा में प्रवृत्त रहता है। क्रोध एवं भय में यह अन्तर है[4] कि क्रोध दुःख के कारण पर प्रभाव डालने के लिए आकुल रहता है और भय उसकी पहुँच से बाहर होने के लिए।

अमर्ष में दुःख पहुँचाने वाली बात के पक्षों की ओर तथा उसकी असह्यता पर विशेष ध्यान रहता है। झल्लाहट, क्षोभ आदि भी क्रोध के ही रूप हैं। जब किसी की कोई बात या काम पसन्द नहीं आता है और वह बात बार-बार सामने आती है तो झल्लाहट उत्पन्न हो जाती है—जो क्रोध का ही एक रूप है। अपनी गलती पर मन का परेशान होना भी क्षोभ है।

क्रोध के परिणाम—सर्वप्रथम तो क्रोधी व्यक्ति की आकृति ही भयंकर एवं वीभत्स हो जाती है। शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन अव्यवस्थित हो जाता है। आकृति पर अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं जैसे मुख तमतमाना, आंखें लाल होना, होंठ फड़फड़ाना, नथुने फूलना, जिह्वा लड़खड़ाना, वाक्य व्यवस्था अव्यवस्थित होना।

क्रोध को अग्नि की उपमा देते हुए हेमचन्द्राचार्य ने कहा है[5] कि क्रोध सर्वप्रथम अपने आश्रय-स्थान को जलाता है—बाद में अग्नि की तरह दूसरे को जलाए या न जलाए। क्रोध के विषय में ज्ञानार्णव में शुभचन्द्राचार्य ने भी इसी प्रकार विवेचन किया है।[6] यह निश्चित है कि क्रोधी व्यक्ति दूसरे का अनिष्ट कर सके या नहीं पर स्वयं के लिए शत्रु सिद्ध होता है। शारीरिक दृष्टि से उसकी शक्ति क्षय होती है और अनेकानेक रोगों का जन्म होता है।

आज मनोविज्ञान और औषधि विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है[7] कि क्रोध की स्थिति में थाइराइड

---

१. क० चू०, अ० ६, गा० ८६ का अनुवाद
२. आयारो, अ० ३, उ० ३, सू० ६६
३. चिन्तामणि, भाग-२, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १३६
४. चिन्तामणि-भाग २, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२५
५. योगशास्त्र, हेमचन्द्राचार्य प्रकाश ४, गा० १०
६. ज्ञानार्णव, शुभचन्द्राचार्य, सर्ग १६, गा० ६
७. (अ) शारीरिक मनोविज्ञान, ओझा एवं भार्गव, पृ० २१६
(ब) सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, डा० रामनाथ शर्मा, पृ० २४०-२४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थि ठीक से कार्य नहीं करती। एड्रीनल मैड्यूला ग्रन्थि ऐड्रीनेलिन हारमोन को रुधिर धारा में मिलाती है। स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र हृदयगति, रक्तप्रवाह, रक्तचाप तथा नाड़ी की गति में वृद्धि कर देता है, पाचनक्रिया में विघटन डालता है, रुधिर के दबाव को बढ़ाता है। इस प्रकार क्रोध से पेप्टिक अल्सर, हृदयरोग, उच्च रक्तचाप आदि अनेक रोग होते हैं।

क्रोधी व्यक्ति का परिवार में आतंक बना रहता है, भयजनक वातावरण रहता है—उसके प्रति स्नेह और प्रेम का ह्रास हो जाता है। परिवार में अनुशासन आवश्यक है—आतंक नहीं। समाज में क्रोधी व्यक्ति सम्मान का पात्र नहीं बन पाता। ऐसा व्यक्ति क्रोध करके अपने ही किए कार्यों पर पानी फेर देता है। अतः क्रोध शरीर, परिवार और समाज की दृष्टि से उचित नहीं—यह सत्य है किन्तु विशेष रूप से आत्मिक दृष्टि से वह अत्यन्त हानि को प्राप्त होता है।

हेमचन्द्राचार्य ने कहा है[1]—क्रोध शरीर और मन को संताप देता है, क्रोध वैर का कारण है, क्रोध दुर्गति की पगडण्डी है और क्रोध परम सुख को रोकने के लिए अर्गला समान है। क्रोध व्यक्ति की शान्ति को भंग कर देता है, हृदय व्याकुल कर देता है, मन क्षुब्ध बना देता है, और आत्मा में कर्म कालुष्य की वृद्धि कर जन्म-मरण का कारण बनता है।

क्रोध के प्रसंग में क्रोध को न आने देने के लिए कुछ चिन्तन सूत्र उपयोगी हैं—

(१) क्रोध द्वारा होने वाली हानियों पर दृष्टि
(२) स्वयं के दोष देखने का प्रयास
(३) दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न
(४) स्थान परिवर्तन
(५) चिन्तन शैली में परिवर्तन
(६) अल्प अपेक्षाएँ
(७) अहंकार को प्रबल होने से रोकना

यदि व्यक्ति प्रयास करे तो वह अपनी वृत्तियों पर नियन्त्रण कर सकता है। ध्यान रखें—

क्रोध प्राणियों के अन्तरंग एवं बाह्य को अनेक प्रकार से जलाता है अतः वह एक अपूर्व अग्नि है। अग्नि मात्र बाह्य को जलाती है किन्तु यह अन्तरंग को भी जलाता है। बुद्धिमानों की भी चक्षु सम्बन्धी और मानसिक दोनों ही दृष्टियों का एक साथ उपघात करने से क्रोध कोई एक अपूर्व अन्धकार है, क्योंकि अन्धकार तो केवल बाह्य दृष्टि का ही उपघातक होता है। जन्म-जन्म में निर्लज्ज होकर अनिष्ट करने वाला होने से क्रोध कोई एक अपूर्व ग्रह या भूत है; क्योंकि भूत तो एक ही जन्म में अनिष्ट करता है। उस क्रोध का विनाश करने के लिए क्षमादेवी की आराधना करनी चाहिए।[2]

卐 卐

---

१. योगशास्त्र, हेमचन्द्राचार्य, प्रकाश ४, गा० ६
२. अनगार धर्मामृत, अ० ६, श्लोक ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org